परीक्षापयोगी व्याख्या

लघु संकेत समझ राजा का
गण दौडे। लाये असाध्य वीणा
साधक के आगे रख उसको, हट गये।
सभी की उत्सुख आँखें
एक बार वीणा को लख, टिक गयीं,
प्रियंवद के चेहरे पर।

प्रसंग सहित व्याख्या– 'असाध्य वीणा' अज्ञेय की एक महत्वपूर्ण कलाकृति हैं। यह उनकी लम्बी कविता है जो सर्जना के गहन व विशिष्ट स्तरों का संकेत देती है। इसकी कथा प्रख्यात प्राचीन चीनी कथा पर आधारित हैं। इस कविता पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव भी माना जाता है। असाध्य वीणा की कथा जिसी राजा और कलाकार की साधना से बनी है। वीणा का निर्माण उत्तराखण्ड के गिरिप्रान्तर के घने वनांे में उगे हुए करीटी तरु से हुआ है। वज्रकीर्ति ने इस वीणा को बनाया है। वज्रकीर्ति वीणा बनाकर राजा को भेंट कर देता है।

वीणा को बनाने में व्रजकीर्ति ने अपना जीवन पूरा जीवन लगा दिया था। वीणा तो बन गयी, पर व्रजकीर्ति का जीवन समाप्त हो गया। अब वीणा को बजाने वाला कोई नहीं रहा। अतः वह वीणा असाध्य वीणा होकर रह गयी। यद्यपि राजा के दरबार में अनेक कलाकार थे, लेकिन कोई भी कलावन्त उस वीणा को न बजा सका। एक दिन राजा के आमन्त्रण पर एक प्रियवंद नाम का महान तपस्वी साधक वहाद्द आया और उसने अपनी साधना से वीणा के असाध्य तारांे को झंकृत कर दिया।
इसी प्रसंग में कवि कह रहा है कि वह असाध्य वीणा, जिसे अनेक साधक साधने में असफल रहे, उसे झंकरित करने के लिए जब प्रियवंद, केशकम्बली का आगमन राजा के दरबार में हुआ तब राजा ने प्रियवंद को उस असाध्य वीणा के इतिहास से परिचित कराया। प्रियवंद के साथ राजा के वार्तालाप से ही वीणा लाने का संकेत पाकर सेवकजन उस असाध्य वीणा को दरबार में ले आये।

यह वीणा कोई साधारण वीणा न थी, अपितु इसे तो अनेक अनुभवी, ज्ञानी, साधक भी साधने में असफल रहे थे, इसीलिए सम्भवतः इसे 'असाध्य वीणा' की संज्ञा दी गयी। सेवकों ने वह वीणा साधक अर्थ

इसीलिए सम्भवतः इसे 'असाध्य वीणा' की संज्ञा दी गयी। सेवकों ने वह वीणा साधक अर्थात् प्रियवंद के सम्मुख रख दी। वस्तुतः एक सच्ची साधना लक्ष्याभिमुख पर ही आधारित होती है। इस सच्ची साधना के अभाव में ही अनेक साधक इस वीणा को झंकरित करने में असफल रहे। अब समस्त सभाजनों की उत्सुक आँखों ने पहले उस अद्भूत वीणा को देखा और फिर उसे साधने का प्रयास करने वाले साधक प्रियवंद को देखा।

टिप्पणी– (1) यहाँ कवि ने 'उत्सुक आँखों' का अत्यन्त सार्थक प्रयोग किया गया है। वस्तुतः अनेक साधकों द्वारा भी असाध्य होने के कारण यह वीणा उत्सुकता का विषय बनी हुई है। प्रियवंद केशकम्बली भी इसे साधने में सफल होता है अथवा अफसल, यही जानने की उत्सुकता सभाजनों में विद्यमान है। यह उत्सुकता इतनी महती, प्रबल हो गयी है कि अब वह हृदय में भी समाहित नहीं हो पा रही है और न हृदय में भी समाहित नहीं हो पा रही है और नेत्रों के माध्यम से प्रतिबिम्बित हो रही है।

(2) 'सभा' शब्द का प्रयोग भी यहाँ अत्यन्त सार्थक प्रतीत होता है। यहाँ विशिष्ट वर्ग का प्रतिनिधित्व राजा, रानी कर रहे हैं और सामान्य वर्ग का द्योतित करने हेतु सभा का प्रयोग किया गया है। वीणा यहाँ अभिव्यक्ति का प्रतीक है। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि उग्र वीणा को मन्त्रमुग्ध, मनमोहक, आत्मविस्मृत-सी कर देने वाली झंकार न केवल विशिष्ट वर्ग के लिए है, अपितु वह सामान्य जन तक भी सम्प्रेषित होगी। अर्थात् कवि की लोकातीत, कालातीत अभिव्यक्ति समस्त वर्गों के लिए होती है, यह अलग बात है कि वह आत्माभिव्यक्ति व्यक्ति अपनी-अपनी मनोभूमि से ग्रहण करता है।

(3) कवि के अनुसार वीणा आत्मभिव्यक्ति की प्रतीक है और प्रियवंद की साधना की प्रक्रिया वस्तुतः कविता रचने के क्रम को सूचित करती है।

यह वीणा उत्तरखाण्ड के गिरि-प्रान्तर से
घने वनों में जहाँ तपस्या करते हैं व्रतचारी-
बहुत समय पहले आयी थी।
पूरा तो इतिहास न जान सके हमः
किन्तु सुना है
वज्रकीर्ति ने मन्त्रपूत जिस
जिस प्राचीन करीटी-तरु से इसे गढ़ा था-

प्रसंग सहित व्याख्या- 'असाध्य वीणा' शीर्षक लम्बी कविता से अवतरित इस अंश पूर्वोक्त प्रसंग में ही राजा प्रियवंद को वीणा के इतिहास से परिचित कराते हुए कहता है कि असाध्य वीणा उत्तराखण्ड में विशाल पर्वतों के मध्य स्थित सघन वनों वाले ऐसे स्थल से बहुत समय पूर्व आयी थी, जहाँ सदैव तपस्वी जन योग आदि में रत रहते है। अर्थात् जिस वन प्रान्तर का वातावरण मन्त्रोच्चारण, यज्ञादि की अग्नि से तथा तप के उज्जवल, शुभ्र आलोक से पवित्र रहता है, उसी वन के किरीटी तरु के काष्ठ से इस अद्भूत वीणा का निर्माण हुआ है।

राजा कहता है कि इस अति प्राचीन वीणा के सम्पूर्ण इतिहास से तो हम भी अनभिज्ञ है, किन्तु सुनने में यहीं आया है कि इस अतिविशिष्ट वीणा का निर्माण

मन्त्रों से शुद्धित, अनायास प्रदत्त अलौकिक गुणों के अखण्ड कोष, अति प्राचीन किरीट तरु के काष्ठ से इसे गढ़ा था।

टिप्पणी– (1) प्रस्तुत पंक्तियों में वीणा अभिव्यक्ति का, किरीट तरु परम्परा से गृहीत व्यष्टि और समष्टिगत असंख्य अनुभूतियों के पुंजीभूत रूप का तथा व्रजकीर्ति यशःकाय कवियों का प्रतीक है। जिस प्रकार किरीट तरु से अनेक वर्षों तक कठिन तप के पश्चात् वज्रकीर्ति ने वीणा का निर्माण किया, उसी प्रकार कवि भी एक लम्बे अन्तराल से अपने से संचित, चराचर जगत में सम्पृक्त अनुभूतियों को अभिव्यक्ति का रूप प्रदान करते है और ऐसी अभिव्यक्ति ही सार्वजनीन होकर कवि को अमर, यशस्वी देह प्रदान करती है।

(2) 'गढ़ा' शब्द अत्यन्त सार्थक है। जिस प्रकार वीणा का निर्माण शनैः शनैः अनेक वर्षों में सम्पन्न हुआ, उसी प्रकार एक संवेदनशील, मर्मज्ञ कवि सर्वजनसम्पृक्त अनुभूतियों को कविता के रूप में आकार देता है, उन्हें स्थूल स्वरूप प्रदान करता है और

देता है, उन्हें स्थूल स्वरूप प्रदान करता है और फिर यही लोकातीत, कालातीत, सीमातीत अभिव्यक्ति जन-जन तक सम्प्रेषित होकर उसे कीर्ति का पात्र बनाती है।

(3) जिस प्रकार व्रजकीर्ति द्वारा निर्मित वीणा एक मौलिक वीणा एक मौलिक रचना है। उसी प्रकार व्यष्टि से विलग तथा सव्यष्टि से सम्पृक्त होकर जब साहित्यिकार कविता के माध्यम से अपनी कालातीत अनुभूतियाँ अभिव्यक्त करता है तो वह कविता भी मौलिक स्वरूप धारण करती है।

(4) असाध्य वीणा गढ़ने की प्रक्रिया वस्तुतः कविता के रचने की प्रक्रिया है। वीणा को गढ़ने की प्रक्रिया, रचना प्रक्रिया और सम्प्रेषण प्रक्रिया को युगपत रूप से प्रतीकित करती है।

(5) प्रतीकों का अत्यन्त सटीक, सार्थक, सहज व स्वाभाविक प्रयोग कविता में निहित अर्थ को उद्घाटित कर देता है।

पर उस स्पन्दित सन्नाटे में
मौन प्रियवंद साध रहा था वीणा–
नहीं, स्वयं अपने को शोध रहा था।
सघन निविड़ में वह अपने को
सौंप रहा था उसी किरीटी–तरु को।
कौन प्रियवंद है कि दम्भ कर
इस अभिमन्त्रित कारुवाद्य के सम्मुख आवे ?
कौन बजावे
यह वीणा जो स्वयं एक जीवन–भर साधना रही ?

प्रसंग सहित व्याख्या– प्रस्तुत पद्यावतरण अज्ञेय कृत 'असाध्य वीणा' शीर्षक लम्बी कविता से लिया गया है। प्रियवंद को वीणा के समक्ष नतमस्तक देखकर सम्पूर्ण सभा हतप्रभ सी थी। सभी के हृदय में प्रियवंद की सफलता के प्रति शंका उत्पन्न हो रही थी, परन्तु प्रियवंद वस्तुतः अपनी अन्श्चेतना से सम्पृक्त होता हुआ बाह्य संसार से पूर्णतया कट चुका था। इस प्रकार वह आत्मनिर्वासित–सा होकर उस असाध्य वीणा व अतिप्राचीन किरीटी तरु से अपना तादात्मय स्थापित कर रहा था।

इस भाव को इन पंक्तियों में प्रस्तुत करते हुए कवि कह रहा है कि प्रियवंद को वीणा पर नतमस्तक होता हुआ देखकर सभा के हृदय में सहज आंशका ने जन्म

खकर सभी के हृदय में सहज आशंका ने जन्म ले लिया। प्रियवंद की सफलता-असफलता, विजय-पराजय, के प्रति अनेक शंकाएँ नाना प्रश्न सभाजनों के अन्तर्मन को व्यथित करने लगे, परन्तु वातावरण शब्दरहित, नीरव, स्तब्ध था, जिसमें कही कोई हलचल नहीं थी। ऐसे स्पन्दित सन्नाटे में गतिहीन, क्रियाहीन प्रियंवद वस्तुतः वीणा को साधने में प्रयासरत था अथवा वह आत्मशोधन कर रहा था। कवि अज्ञेय ने यहाँ 'सन्नाटे ' का अति सार्थक विशेषण 'स्पन्दित' प्रयुक्त किया है। वस्तुतः सभा तो पूर्णतया मौन, निस्तब्ध थी, परन्तु सभाजनों के हृदय को प्रियवंद की जय-पराजय के प्रश्न अपने घात-प्रतिघातों से आलोडित-विलोडित कर रहे थे। बाह्य वातावरण नीरव होते हुए भी अन्तर्मन सहज आशंका के वशीभूत होकर अति व्याकुल अवस्था में स्पन्दित हो रहा था। इस शब्दहीन स्पन्दित वातावरण में कलावन्त प्रियवंद एकाग्रचित होकर, एकात्मभाव से शनैः शनैः अपनी अन्तश्चेतना से सम्पृक्त हुआ तथा बाह्य वातावरण से कटकर उस असाध्य वीणा को साधने का प्रयास कर रहा था।

'साधना' शब्द सारगर्भित है। जब मनुष्य बाह्य संसार से पूर्णतया कटकर अपने अन्तर्मन की गहराइयों तक, अपने साध्य से जुड़ता है, उससे तादात्म्य स्थापित

है, तब साधने की प्रक्रिया आरम्भ होती है। कवि कहता है कि मौन प्रियवंद वस्तुतः स्वयं को शोधने की प्रक्रिया भी उसी एकान्त में कर रहा था। शोधना अर्थात् परिशोधन करना, स्वयं को संस्कारयुक्त करना है। अपने अहंभाव, वैयक्किता को शनैः शनैः आत्मविवेचन द्वारा सद्गुणों के सारतत्व को ग्रहण करना ही वस्तुतः आत्मशोधन की प्रक्रिया है। इस प्रकार का आत्मशोधित, आत्मविवेचित, संस्कारयुक्त प्रियवंद स्वयं को उस सघन एकान्त में, एकनिष्ठ भाव से उसी प्राचीन किरीटी तरु को सौंप रहा था जिसमें इस असाध्य वीणा को निर्माण हुआ था। एकान्त भी सघनतम तब बनता है, जब व्यक्ति आत्मनिर्वासित हो जाता है, वह बाह्य क्रियाकलापों से पूर्णतया विलग होकर अपनी अन्तश्चेतना से सम्पृक्त हो जाता है।

- यूजीसी नेट हिंदी नोट्स

ऐसे ही एकान्त में वह साधक प्रियंवद अपने परिशोधित अस्तित्व को, व्यक्तिगत रूप को, उस किरीटी तरु के प्रति समर्पित कर रहा था। वह किरीटी तरु जो परम्परा से गृहीत व्यष्टि और समष्टिगत असंख्य अनुभूतियों का अखण्ड पुंजीभूत स्वरूप है, उसके प्रति आज प्रियंवद अपना आत्मशोधित व्यक्तित्व एकनिष्ठ भाव से समर्पित कर रहा था।

साक्षात्कार भी कर सके। अर्थात् अहंग्रस्त व्यक्तिगत इस अप्रतिम कलाकार के वाद्य का साक्षात्कार ही नहीं कर सकता, उसे झंकरित करना तो दूर की बात है। दम्भ वे विरूपित साधना साधक का सत्य से साक्षात्कार कराने में बाधक हाती है।

प्रियंवद स्व-अस्तित्व को विस्मृत कर कहता है कि ऐसा कौन समर्थ है जो इस असाध्य वीणा को झंकरित कर सके। यह वीणा कोई सामान्य वीणा नही है, अपितु यह तो वज्रकीर्ति के सम्पूर्ण जीवन की साधना का ही प्रतिफल है। व्रजकीर्ति ने बाह्य उपादानों द्वारा, जिनमें आदिम अनुभूतियाँ संचित थी, अपनी अनवरत साधना करते हुए इस वीणा का निर्माण किया था। अतः ऐसी विशेषतिविशेष वीणा को कौन झंकृत करने में समर्थ है।

टिप्पणी- (1) 'सौंपना' शब्द अतिसारगर्भित है। वस्तुतः यह अज्ञेय की रचना-प्रक्रिया का मूलमन्त्र है। "सत्य के सम्मुख साधना के सम्मुख व्यक्ति अपनी अलग इकाई को सौंपकर, अंहमुक्त होकर ही अपनी व्यक्तिनिष्ठ साधना की परमोपलब्धि कर सकता

नेष्ठ साधना की परमोपलब्धि कर सकता है।"

मैं सुनूँ,
गुनूँ,
विस्मय से भर आँकूँ
तेरे अनुभव का एक-एक अन्तःस्वर
तेरे दोलन की लोरी पर झूमूँ मैं तन्मय-
गा तूः
तेरी लय पर तेरी साँसें
भरें, पुरें, रीतें, विश्रान्ति पायें।

प्रसंग सहित व्याख्या- पूर्व प्रसंग में ही किरीटी तरु के समक्ष विनयावनत प्रियवंद के मनोगत भावों को उद्भासित करते हुए कविवर अज्ञेय ने संवदेनशील कवि की अभिव्यक्ति के उपरान्त उत्पन्न अद्भूत संतोष की भावना को प्रतीकात्मक रूप से चित्रित किया है। प्रियंवद किरीटी तरु को सम्बोधित करते हुए कहता है कि परम्परा से गृहीत व्यष्टि व समष्टिगत अनुभूतियाँ जो तुझमें केन्द्रीभूत हो गयी है, उनके अन्तःस्वरांे को मैं सूनूँ, भली-भाँति ग्रहण करूँ और आश्चर्यचकित होकर उनकी विवेचना करूँ।

'अनुभवों को एक-एक अन्तःस्वर' कहने का तात्पर्य यह है कि मैं तेरे मात्र बाह्य सम्पूर्ण रहस्यों को जानना चाहता हूँ। 'विस्मय से भर आँकूँ' अति अर्थगर्भित

जाता है। जिस प्रकार एक शिशु जब घर के आँगन की सीमा में ही क्रीडारत रहता है तो वह बाह्य जगत के उपादानों से पूर्णतया अनभिज्ञ रहता है, जब कोई उसे गोद में उठाकर घर की सीमा से बाहर ले जाता है तो वह सभी वस्तुओं को हतप्रभ, आश्चर्यचकित होकर देखता है, उसे जानने का प्रयास करता है, उसी प्रकार प्रियंवद कहता है कि जब सृष्टि के रहस्यों से अनभिज्ञ मेरे समक्ष तुम एक-एक करके समस्त रहस्यों को अनावृत्त करोगे तो मैं विस्मित होकर चकित-सा उन रहस्यों की विवेचना करूँगा।

जिस प्रकार माँ अपने शिशु को अति आत्मीय भाव से संगीत के स्वर गुनगुनाकर सुला देती है, उसी प्रकार तू भी मेरे प्रति आत्मीय भाव रखकर मेरे समक्ष सृष्टि के रहस्य अनावृत्त कर। 'गा तू' शब्द अति सार्थक है। प्रियवंद के अनुसार है विराटकाय किरीटी तरु! यदि तू स्नेहिल स्वरांे से मुझे सृष्टि के रहस्यों से अवगत करायेगा तो मेरे लिए वे जटिलमय रहस्य भी सरलतापूर्वक ग्राह्य हो जायेंगे। प्रियवंद इच्दा व्यक्त करता है कि जब तू सृष्टि के, अखिल ब्रह्माण्ड के रहस्य अनावृत्त करे तो मेरी साँसें उन्हें ग्रहण करे।

साँसों से कवि का तात्पर्य सम्पूर्ण प्राणशक्ति, अन्तश्चेतना से है। प्रियंवद के अनुसार वह अवस्था आ

तना से है। प्रियवद के अनुसार वह अवस्था आ जायेगी कि बाह्य सृष्टि की अनुभूतियों को ग्रहण करने को, मेरे अन्तर्मन मे कोई स्थान शेष न रह जायेगा और तेरे पास भी कोई ऐसा रहस्य शेष नहीं रह जायेगा जो मेरे समक्ष अनावृत्त न हुआ हो, तब मेरे हृदय में संचित वे समस्त रहस्य, अपनी पूरी सामथ्र्य, योग्यता के साथ, अभिव्यक्त हो जायेगें और मैं तेरे ही अंश से निर्मित उस असाध्य वीणा को झंकरित करने में सफलता प्राप्त कर सकूँगा। इस प्रकार जब मेरे जीवन का लक्ष्य पूर्ण हो जायेगा, तब मेरी ये साँसें, मेरी अन्तश्चेतना अर्थात् स्वयं मैं सम्पूर्ण मानसिक व शारीरिक श्रम से रहित होकर तुम्हारी शरण में शांति प्राप्त करूँगा।

यहाँ कविवर अज्ञेय वस्तुतः यह स्पष्ट करना चाहते है कि जब संवदेनशील कवि अपने में संचित समष्टिगत अनुभूतियों को कविता के माध्यम से अभिव्यक्त कर देता है तो उसे लक्ष्य प्राप्त हो जाता है और फिर उसे एक अनिर्वचनीय, अवर्णनीय आनन्द, आत्मसंतोष की प्राप्ति होती हैं।

टिप्पणी– (1) इस आत्मीयकरण की प्रक्रिया सहसा कवि के मन में अपनी भोगी अनुभूतियों की शंृखला जगा देती है और उसे 'हाँ स्मरण है' के माध्यम से सब कुछ खण्डशः उपलब्ध होने लगता है।

(2) ...ावतरण की अन्तिम पंक्ति में वर्णमैत्री और 'ध्वन्यात्मकता' अर्थ को और अधिक प्रभावमयता प्रदान कर रही है। प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग भी द्रष्टव्य है।

मुझे स्मरण है
उझक क्षितिज से
किरण भोर की पहली
जब तकती है ओस-बूँद को
उस क्षण की सहसा चैंकी-सी सिहरन।
और दुपहरी में जब
घास-फूल अनदेखे खिल जाते हैं
मौमाखियाँ, असंख्य झूमती करती हैं गुंजार-
उस लम्बे विलमे क्षण का तन्द्रालस ठहराव।

प्रसंग सहित व्याख्या- प्रस्तुत पंक्तियों में पूर्व प्रसंगानुसार ही कवि अज्ञेय ने प्रकृति की आत्मीयता, उसके अतीन्द्रिय सौंदर्य की तरलता को आत्मसात् करते हुए उसके विभिन्न उपादानों के मध्य स्थापित रागात्मक सम्बन्ध का बिम्बात्मक शब्द-चित्र अंकित किया है जिसे प्रियवंद न केवल अपने अन्तर्मन में उनका स्पन्दन अनुभव कर रहा है, अपितु स्मृतियों के परावर्तन के माध्यम से उन्हें पुनः अनुभूत भी कर रहा है।

प्रियवद के अनुसार प्रभाव की प्रथम किरण ने क्षितिज से झाँककर पृथ्वीतल को देखा और रात्रि में झरी तरल, कोमल, ओस-बिन्दु को वहाँ देखकर, वह भोर की नव-किरण उससे सम्पृक्त हो गयी और ओस की बूँद अकस्मात् उसका स्पर्श पाकर सिहर उठी, पुलकित हो उठी। प्रकृत्ति का यह कोमल दृश्य स्मृतियों के परावर्तन से प्रियवंद को पुनःस्मरण हो आया है। वस्तुतः कवि ने यहाँ अति सुन्दर बिम्बात्मक चित्रण किया है।

ओस-बिन्दु आकाश से झरे हैं और किरण का विनाश भी वही है, अर्थात् दोनों जैसे बिछुड़ गये हों और क्षितिज के आँगन में सोयी प्रभात-किरण जब निद्रा से जागी तो अपने संगी ओस-बिन्दु को निकट न पाकर बड़ी उत्सुकता के साथ, पंजों के बल उलझकर क्षितिज से इधर-उधर देखने लगी तो उसे वह पृथ्वीतल पर दिखाई पड़ी और तत्क्षण वह उससे मिलने को चल पड़ी किरण का प्रणयातुर स्पर्श पाकर ओस की बूँद किरणरूपी अप्रत्याशित प्रिय का अकस्मात सान्निध्य इतना निकट पाकर आहाद से, भावातिरेक से सिहर उठी।
कवि के अनुसार अपराह्न काल में जब अनजाने, अनचीन्हे घास-फूस भी खिल जाते हैं अर्थात् दोपहर

सूर्य का प्रकाश धरती के कण-कण को अपने आगोश में ले लेता है और घास-फूल भी उस आलोक में चमक उठते हैं। मधुमक्खियाँ अपने गुंजार के माध्यम से रसपान की आतुरता को व्यक्त करने लगती है।

कवि के अनुसार ऐसा क्षण-विशेष जिसमें प्रकृति का साधारण से साधारण अंग भी उसके साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर, प्रकृति की आत्मीयता सरसता का अर्जन करता है, तो मेरे लिए उतना ही दीर्घ व विलम्बित हो गया है जैसे कोई संगीतज्ञ एक स्वर को लम्बे अन्तराल पर खींचे लेता है। यह क्षण विशेष न केवल दीर्घ ही हुआ है, अपितु इसने मुझे भावमय, तन्द्रिल अवस्था प्रदान कर दी है।

- हिंदी साहित्य ट्रिक्स

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार इसने मुझे भावमय, तन्द्रिल अवस्था प्रदान कर दी है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार निद्रा व जागरण से पूर्व की अवस्था में आलस्य इतना प्रबल होता है कि व्यक्ति उसके वशीभूत होकर अपने आवश्यक कार्य भी नहीं कर पाता, उसी प्रकार प्रकृति व उसके उपादानों के मध्य स्थापित तादात्मय को भावविहल होकर कवि जैसे अपने समस्त कार्यों से विमुख

स्था में आलस्य इतना प्रबल होता है कि व्यक्ति उसके वशीभूत होकर अपने आवश्यक कार्य भी नहीं कर पाता, उसी प्रकार प्रकृति व उसके उपादानों के मध्य स्थापित तादात्मय को भावविहल होकर कवि जैसे अपने समस्त कार्यों से विमुख हो तन्द्रिल अवस्था में ठहर गया है।

यहाँ कवि ने तो सोना चाहता है और न ही जागने ही इच्छा रखता है, क्यांेकि यदि वह सो जायेगा तो प्रकृति के इस अनुपमेय अद्वितीय दृश्य को देखने से वंचित रह जायेगा और यदि वह जाग जायेगा अर्थात् सचेत हो जायेगा तो जीवन सम्बन्धी अन्य चिन्ताएँ उसकी आत्मा को इस दृश्य का पूर्ण रसास्वाद नहीं करने देंगी और वह अतृप्त रह जायेगा।

टिप्पणी– (1) प्रियंवद के अन्तर्मन में सुप्तावस्था में विद्यमान अनुभूतियाँ स्मृतियों के परावर्तन से जाग्रत हो रही है।

(2) 'उझक' शब्द अति ध्वन्यात्मक है, जो स्वयं में , देखने वाले का , सम्पूर्ण औत्सुक्य आतुरता को समाहित किए हुए है।

सहसा वीणा झनझना उठी–
संगीतकार की आँखों में ठंडी पिघली ज्वाला सी झलक गयी–
रोमांच एक बिजली सा सबसे तन में दौड़ गया।
अवतरित हुआ संगीत
स्वयंभू
जिसमें सोया है अखण्ड
ब्रह्मा का मौन
अशेष प्रभामय।
डूब गये सब एक साथ।
सब अलग–अलग एकाकी पार तिर।

प्रसंग सहित व्याख्या– 'असाध्य वीणा' कविता की इन पंक्तियों में कवि अज्ञेय ने उस स्थिति का वर्णन किया है जबकि प्रियंवद की मौन साधना के परिणामस्वरूप अचानक वीणा बज उठती है। कवि कह रहा है कि मौंन साधक प्रियवंद आत्मशोधन करते हुए जब पूरी तरह वीणा के प्रति समर्पित हो गया और उसने अपने अंहकार को वीणा के प्रति पूरी तरह समर्पित कर दिया तब अचानक वीणा के तार झनझना उठे।

उनसे जो स्वर–लहरी निकली उसकी एक चमक संगीतकार की आँखों में उस ज्वाला के समान

कार की आँखों में उस ज्वाला के समान दिखलाई दी जो शीतल होकर पिघलने लगती है। स्पष्ट अर्थ यह है कि जिस प्रकार जमा हुआ हिम गर्मी पाकर पिघल जाता है वैसे ही वीणा प्रियवंद की मौन-साधना की उष्णता पाकर पिघल गयी और उसकी स्वर-लहरी सुनकर संगीतकार की आँखों में एक अद्भूत ज्योति उत्पन्न हो गयी।
कवि अज्ञेय कह रहे है कि वीणा के बजते ही वहाँ पर उपस्थित सभी व्यक्तियों के शरीर में एक रोमांच उत्पन्न हो आया।

सभी ने यह अनुभव किया कि उनके शरीरों में कोई विद्युत तरंग दौड़ने लगी हो। इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी पर संगीत की धारा बहने लगी जो साक्षात् ईश्वर की धारा जैसी थी। कवि ने लेखा है कि उस संगीत धारा में एक अखण्डता थी और सम्पूर्ण सृष्टि की प्रभा उसमें व्याप्त थी। संगीत की उस अदभूत अलौकिक स्वर लहरी में सभी आनन्दित होकर डूब गये। ऐसा लगा जैसे सभी एक साथ उसमें तन्मय हो गये हों।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति का सत्य अलग-अलग होता है और मनुष्य उसी सत्य के द्वार पर उतरता है। यही स्थिति इन पंक्तियों में व्यक्त हुई है।

टिप्पणी– (1) प्रस्तुत पंक्तियों में उदात्त और अभिजात्य युक्त शब्दावली का प्रयोग वीणा से निकलने वाले संगीत के लिए किया गया है। यह सर्वथा उचित है।

(2) अन्तिम पंक्तियों में सबका एक साथ आनन्दमग्न होना और अलग–अलग पार उतरना बतलाकर कवि ने यह स्पष्ट संकेत कर दिया है जो व्यक्ति जितनी साधना करता है, उसी अनुपात में वह पार उतरा करता है।

रानी ने अलग सुना:

छंटती बदली में एक कौंध कह गयी–
तुम्हारे ये मणि–मणिक, कंठहार, पट–वस्त्र,
मेखला किंकणि
सब अन्धकार के कण हैं ये! आलोक एक है
प्यार अनन्य! उसी की
विद्युल्लता घेरती रहती है रस–भार मेघ को,
थिरक उसी की छाती पर, उसमें छिप कर सो
जाती है
आश्वस्त, सहज विश्वास भरी।
रानी
उस एक प्यार को साधेगी।

प्रसंग सहित व्याख्या– 'असाध्य वीणा' कवि

सहित व्याख्या– 'असाध्य वीणा' कविता के अन्तिम भाग से अवतरित इस पद्यांश में कवि ने यह प्रतिपादित कि आत्मान्वेषण, समर्पण और अहं के विगलन के पश्चात् प्रियंवद की साधना पूरी हो गयी और उसके साथ ही साथ वीणा भी संकत हो उठी। वीणा से निकलते हुए स्वर अभूतपूर्व थे। उनकी यह अभूतपूर्वता इसी से प्रमाणित होती थी कि उससे निकला हुआ स्वर–संगीत था तो एक जैसा ही, किन्तु उपस्थित लोगों को अलग–अलग ढंग से अनुभव हुआ।

राजा ने जब उस स्वर को सुना, तब वे जाग्रत हो गये। उन्हें लगा कि यश की देवी वरमाला लिए हुए उकना स्वागत कर रही है। उन्हें सारा संसार और प्रलोभन के साधन व्यर्थ लगने लगे। रानी की स्थिति और भी श्रेष्ठतर थी। जब रानी ने वीणा के स्वर को अपने कानांे से सुना, तब उन्हें लगा कि जैसे किसी बदली में से कोई बिजली की कौंध चमककर थोडी देर के लिए ज्ञान–चेतना का प्रकाश फैला गयी हो।

वह चमक अर्थात् विद्युत चमक जो जागृति की सूचक थी, मानो रानी को यह संकेत दे गयी कि तुमने मणि–माणिक्य से निर्मित जो कण्ठहार धारण कर रख है, जो रेशमी वस्त्र पहन रखे हैं, वे सब व्यर्थ है, उनका

जो रेशमी वस्त्र पहन रखे हैं, वे सब व्यर्थ है, उनका कोई अर्थ नहीं है। इतना ही नहीं, रानी ने अपनी कमर में जो मेखला धारण कर रखी है, वह भी उसे अन्धकार का कण प्रतीत हुई। भाव यह है कि रानी को यह लगा कि यह सब वस्त्राभूषण आदि कोई मानी नहीं रखते हैं, ये क्षाणिक है और इनका कोई भी स्थायी महत्व नहीं है। यदि इस सृष्टि में कुछ भी सत्य है या कहीं प्रकाश है, तो वह केवल एक ही है और वह है- प्रेम और उससे उत्पन्न समर्पण भाव। उपर्युक्त संदर्भ में ही अज्ञेय जी रानी की अनुभूतियों को शब्दबद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं। वे कह रहे है कि रानी को यह भी लगा कि जैसे प्रकाश आकाश में चमकने वाली विद्युत की कौंध सारे आकाश को घेर लेती है और बादलों में जो रसात्मकता है, उसको भी अपने में समेट लेती है और फिर सारीदुनियाकी रससिक्त कर देती है, वैसे ही संगीत की स्वर-लहरी ने रानी के मन-प्राण को रससिक्त कर दिया।

वह प्रेम भावना की रसपूर्ण धारा से भर उठी। उसे यह भी लगा कि जिस प्रकार विद्युतलता आसमान के वक्ष में कौंधकर फिर उसी में लीन हो जाती है, उसी प्रकार प्रेम का यह संदेश रानी के हृदय के भीतर जाकर छिप गया है।

रानी इस संगीतमय ध्वनि को सुनकर आश्वस्त हो गयी, उसका हृदय विश्वास से परिपूर्ण हो गया और उसके मन में यही भावना उत्पन्न हुई कि अब तो वह इन बहुमूल्य वस्त्राभूषणांे के मोह को त्यागकर केवल प्रेम और उससे जुडे हुए समर्पण भावको ही अपने जीवन में अपनायेगी। तात्पर्य यह है कि रानी का अब तक का मोहान्धकार दूर हो गया और वीणा से निकली हुई ध्वनि ने उसके भीतर की सोयी हुई वास्तविक चेतना को जाग्रत कर दिया। यह सब आत्मान्वेषण, आत्मशोधन और अंहकार के विलयन के पश्चात् की स्थिति है जो रानी को अनुभव हुई।

टिप्पणी– (1) पद्यावतरण मे सामान्यतः तो सहज और व्यवहारिक भाषा का ही प्रयोग किया गया है, किन्तु बीच–बीच में प्रसंग की माँग के अनुसार मेखला, किंकिणी, पटवस्त्र, कण्ठहार, आलोक, अनन्य और विद्युल्लता जैसे शब्दों का प्रयोग करके अज्ञेय जी ने पद्यांश को एक गरिमा और आभिजात्य प्रदान कर दिया है।

(2) इस अंश में अज्ञेय की भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा भी व्यक्त हुई है। उन्होंने भारतीय दर्शन के अनुसार यह भी प्रमाणित कर दिया है कि संसार में जितने भी प्रलोभन के साधन हैं और जितने भी

भी प्रलोभन के साधन हैं और जितने भी आभूषण हैं, वे सब क्षणिक है, नाशवान है। यदि कहीं कोई सत्य है तो वह प्रेम की भावना ही है, जो मनुष्य को मनुष्य बनाती है और जीवन को सार्थकता प्रदान करती है।

श्रेय नहीं कुछ मेराः
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब-कुछ को सौंप दिया था-
सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का थाः
वह तो सब कुछ की तथता थी-
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है।

प्रसंग सहित व्याख्या- प्रस्तुत पद्यावतरण 'असाध्य वीणा' कविता के अन्तिम भाग से अवतरित है। जो वीणा असाध्य थी, वह जब सध गयी तब उससे जो स्वर निकला, उसका अलग-अलग प्रभाव सभी व्यक्तियों पर पड़ा। उस स्वर-लहरी में रानी 'प्रेम अनन्य है' जैसी ध्वनि सुनी तो राजा ने यह अनु

है' जैसी ध्वनि सुनी तो राजा ने यह अनुभव किया कि विजय की देवी वरमाला लिए हुए राजा की यश सिद्धि में मंगलमान गा रही है। सभासदों ने वीणा से निकले हुए संगीत को अलग-अलग अर्थों में ग्रहण किया।

किसी ने उसे ईश्वर का कृपा-वाक्य माना, किसी ने आतंक से मुक्ति का आश्वासन, किसी व्यापारी ने उस संगीत की लहरी में सोने की भनक सुनी तो किसी गृहस्थ ने अन्न की सौंधी हुई खुश्बू का अनुभव किया, किसी ने उसमें पायल की ध्वनि सुनी तो किसी को उसमें शिशु की किलकारी सुनाई दी।

इस प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न करके वीणा मौन हो गयी। राजा सिंहासन से नीचे उतरे और रानी ने संगीतकार को रत्नजडि़त सतलडी़ माला अर्पित की, किन्तु संगीतकार ने बडे़ आदरभाव से गोद में रखी हुई वीणा को धीरे से धरती पर रखा और कहने लगा कि यदि यह असाध्य वीणा सध गयी है तो इसमें मेरा कोई योगदान नहीं है। वीणा को साधने में मैं अपना श्रेय नहीं मानता हूँ। वास्तव में तो इस वीणा को अपनी गोद में रखकर मैं स्वयं शून्य में डूब गया था।

एक प्रकार से वीणा के द्वारा मैंने अपने आपको उस

एक प्रकार से वीणा के द्वारा मैंने अपने आपको उस सर्वोच्च सत्ता को समर्पित कर दिया था जो सभी की सुरक्षा करती है। कलाकार के कहने का अभिप्राय यह है कि यदि मनुष्य किसी कार्य को कर लेता है तो भी उसे अपने आपको कत्र्ता नहीं मानना चाहिए। वास्तव में वह माध्यम होता है, कत्र्ता तो वही ईश्वर है जो सबकी रक्षा-व्यवस्था करता है। जो जितना देता है, वह उतना ही प्राप्त करता है। अतः व्यक्ति को अपना सब-कुछ उसी सर्वोच्च शक्ति को समर्पित कर देना चाहिए।

संगीतकार ने कहा कि वीणा से जो स्वर-लहरी निकली है, जो समूची सृष्टि में मौन भाव से व्याप्त है। उस शक्ति को न तो विभाजित किया जा सकता है और न उसकी व्याख्या की जा सकती है, वह तो अद्भूत है और शब्दहीन होकर सभी के स्वरों में व्यक्ति विशेष को आधार पर प्रस्फुटित होती रहती है।

कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य की वाणी चाहे वह कैसी भी क्यों न हो, उसी परम सता की वाणी है। अतः उसे अपनी मानकर अंहकार ग्रसित होने का कोई औचित्य ही नहीं है। वास्तविक और सर्वोच्च शक्ति का अनुभव आत्मशोधन, व्यक्तित्व-विलयन और अहंकार के शमन द्वारा ही हो सकता है। यही इस पद्यांश में वर्णित हुआ है।

टिप्पणी- (1) उपर्युक्त पद्यांश में वह स्थिति वर्णित है जिसमें व्यक्ति व्यक्तित्व का शोधन करके अपने आपको सर्वोच्च शक्ति को समर्पित करता हुआ जीने का अभ्यास करता है।

(2) यह पद्यांश दार्शनिक विचारणा से युक्त है। इसमें शून्य, महाशून्य, महामौन, अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित और अप्रमेय शब्द इसी भाव के द्योतक है।

(3)'तथता' जैसा शब्द तथागत गौतम बुद्ध और उनकी दार्शनिक विचारणा की ओर संकेत करता है। भाषा विषयानुकूल है और उसमें आभिजात्य देखने को मिलता है।